

मधुमक्खी की आत्मकथा

Madhumakkhi Ki Atmakatha

‘मधु!’ कितना मधुर शब्द है यह। कहते-सुनते ही मुख तथा कानों में एक तरह की स्वस्थ शहद या मिठास-सी घुलने लगती है। लेकिन भाई ‘मक्खी’ शब्द का अकेले प्रयोग या उच्चारण किया जाए, तो यह सोच कर जी मितलाने लगता है कि जैसे कुछ अयोजित एवं अस्वाभाविक निगल लिया गया हो। लेकिन मैं न तो केवल ‘मधु’ ही हूँ और न मात्र ‘मक्खी’ ही; बल्कि मैं तो ‘मधुमक्खी’ हूँ, जिसके पास अमृत-तुल्य मिठास तो है ही, चुभ कर शरीर को सूजा हुआ कुप्पा बना देने, कई बार प्राणों तक का हरण कर लेने वाला तीखा डंक भी है। इस कारण भैया, अमृततुल्य मिठास का, मधु का रसास्वादन करने की इच्छा से मेरे समीप जरा सोच-समझ कर ही आना।

प्रकृति ने जीवन और समाज को तरह-तरह के रसभरे सुगन्धित फूल, पेड़-पौधे, अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ और उनके साथ-साथ कई प्रकार के जीवन-जन्तु आदि वरदान स्वरूप दिए हैं, उन अनन्त-असीम वरदानों में से एक वरदान मैं मधुमक्खी भी हूँ। प्रकृति ने एक ओर तो मुझे अपने ही भिन्न सुन्दरतम सजीव तत्त्वों का रस चसने के लिए सुगन्ध-स्वाद ग्रहण कर पाने में समर्थ जीभ और सूक्ष्म होंठ प्रदान कर रखे हैं, दूसरी ओर अपने संचित धन (मधु) की कई प्रकार के चोर, चोषक और शोषक प्राणियों से रक्षा करने के लिए तीखे डंक के रूप में अनन्त शक्ति भी प्रदान की है। इस कारण मैं आनन्द-सुख एवं रहस्य-रोमांच एक साथ करा जाया करती हूँ। मेरा नाम सुनते ही लोगों के मुख जहाँ मधुर स्वाद की अनुभूति से भर कर लार टपकाने लगते हैं, वहाँ भयभीत होकर मुझ से बचे रहने की प्रेरणा भी दिया करते हैं। इस संसार में एक ही प्राणी ऐसा है, जिसे मुझ से तनिक भी भय नहीं लगा करता और जो निशंक भाव से मेरे श्रम-संचित मधु के छत्ते को भरे देखते-देखने, बचाने का लाख प्रयास करने पर भी निचोड़ कर पी जाया करता है। जी हाँ, उस प्राणी का नाम है रीछ यानि भाल। उसके सामने मेरा कतई कोई वश नहीं चल पाया करता।

आजकल तो लोग लाभ कमाने की व्यापारिक दृष्टि से मेरा पालन अपने घरों तक में करने लगे हैं, पर कुछ दशकों पहले तक मेरा अस्तित्व केवल दूर-दराज के घने जंगलों में हुआ

करता था। आज भी निश्चय ही मेरा मूल निवास घने जंगल ही हैं। वहाँ कोई भी घना वृक्ष और उसकी डालियाँ मेरा निवास बन सकती हैं। और कई बार पहाड़ी गुफाओं, घरों के आस-पास पड़े खाली मकानों, स्थानों खण्डहरों में मेरा आवास बन जाया करता है, पर मुख्यतया मैं प्रकृति का जीव होने के कारण हरे-भरे प्राकृतिक वातावरण में ही रहना पसन्द किया करती हूँ। मेरा भोजन अन्य जाति की मक्खियों की तरह गन्दगी, गन्दी वस्तुएँ और जूठन आदि कदापि नहीं है। मेरा भोजन है खिले फूलों, कलियों, रसीले अंकुरों, पत्ते-पत्तियों और फलों का रस। इस को पी कर मेरा बदन फूल तो जाया ही करता है, कुछ मस्ती से भर कर गुनगुनाया भी करता है, नहीं-नहीं, अन्य जाति की मक्खियों की तरह भिनभिन्नाया कदापि नहीं करता। फिर उस रस के फोक को उगल कर मैं अपनी जाति की और मक्खियों से मिलकर छत्ता तैयार किया करती हूँ और अपने तात्त्विक रस से उस छत्ते में मधु तैयार किया करती हूँ। पहले छत्ते में इसे उँडेल कर फिर हम सब मिल कर उस पर बैठ जाया करती हैं और तब तक उसे ही खाती-पीती बैठी रहती हैं कि जब तक फूलों-वनस्पतियों का वह कच्चा रस प्राकृतिक नियम से पक कर मधु या शहद के रूप में नहीं हो जाता। छत्ते के पक जाने की पहचान कर पारखी चुराने वाले कई तरह से हम पर आक्रमण कर के हमारी सारी कमाई को निचोड़-उतार बाजार में बच दिया करते हैं। इस प्रकार हम मधुमक्खियों द्वारा की गई कमाई अर्थात् संचित मधु आप मनुष्यों के पास पहुँच जाता है।

हम मधुमक्खियों की भी अपनी एक अलग व्यवस्था है। नर और मादा हमारे दोनों रूप हुआ करते हैं। हमारी एक रानी मक्खी हुआ करती है। हम सब पर उसी का शासन चला करता है। वही मधु का छत्ता बनाने के लिए उचित स्थान का चयन किया करती है। उसी के आवाहन पर हम सभी इकट्ठी होकर उस छत्ते में पुष्प वनस्पतियों का रस इकट्ठा कर उस से मधु बनाया एवं पकाया करती हैं। एक छत्ता टूट जाने पर प्राकृतिक नियम से ही हमें अपना ठिकाना कहीं दूसरी जगह बनाना पड़ता है।

देहाती किस्म के लोग तो मधु पाने के लिए छत्ते के नीचे कई बार आग जला दिया करते थे, जिसकी आँच पहुँचते ही हम उड़ जातीं और वे मधु चुरा लेते। कई बार काला कम्बल ओड़ कर हम हमला किया जाता। लेकिन आजकल मधुमक्खी-पालन भी एक वैज्ञानिक कुटीर-उद्योग हो गया है, सो हमें पालने से लेकर मधु निकालने तक हर जगह वैज्ञानिक विधियाँ अपनाई जाने लगी हैं, जिन्हें हर तरह से निरापद माना जाता है।